416

गांधी का सत्व

४६७ गांधीजी
धर्माधि

गुजरात युनिवर्सिटी प्रकाशन

गांधी का सत्त्व

(गुजरात युनिवर्सिटीनी अभ्यासेतर प्रवृत्तिओनी योजना
हेठळ अपायेलां व्याख्यानो)

दादा साहेब धर्माधिकारी

गुजरात युनिवर्सिटी
अमदावाद-९

Digitized for Preservation
By

Gandhi Research Foundation
Gandhi Teerth, Jain Hills, Jalgaon. 425 001

गुजरात युनिवर्सिटी प्रकाशन

गांधी का सत्त्व

(गुजरात युनिवर्सिटीनी अभ्यासेतर प्रवृत्तिओनी योजना
हेठळ अपायेलां व्याख्यानो)

दादा साहेब धर्माधिकारी

U0040813

गुजरात युनिवर्सिटी
अमदावाद-

प्रथम आवृत्ति ११०० प्रत [१९७२

© गुजरात युनिवर्सिटी

मूल्य : रु. २-००

मुद्रक
जितेन्द्र मगनलाल पुरोहित
कार्यकारी व्यवस्थापक
गुजरात युनिवर्सिटी
अमदावाद-९

प्रकाशक
कंचनलाल चंदुलाल परीख
कुलसचिव
गुजरात युनिवर्सिटी
अमदावाद-९

प्रकाशक संस्थानुं निवेदन

गुजरात युनिवर्सिटीनी अभ्यासपूरक प्रवृत्तिओनी योजना हेठळ "गांधी का सत्त्व" ए विषय पर ता. ६-११-१९७० अने ता. ७-११-१९७०ना रोज प्रखर विद्वान अने गांधीवादी विचारक श्री. दादा साहेब धर्माधिकारीजीए आपेल व्याख्यानो पुस्तकाकारे प्रसिद्ध करतां आनंद थाय छे.

पोतानी अनेकविध प्रवृत्तिओमांथी वखत काढीने आ व्याख्यानो आपवा माटे गुजरात युनिवर्सिटी तरफथी हुं तेमनो हृदयपूर्वक आभार मानुं छुं.

आ व्याख्यानो युनिवर्सिटीना विद्यार्थीओ उपरांत आ विषयमां रस धरावता सौने उपयोगी नीवडशे एमां शंका नथी.

३०, ऑगस्ट, १९७१
गुजरात युनिवर्सिटी,
अमदावाद-९.

कं. चं. परीख
कुलसचिव.

गांधी का सत्त्व

व्याख्यान १

यों तो मैं लगभग पचास साल से भाषण ही करता रहा हूं, लेकिन कुछ अवसर ऐसे होते हैं, जब भाषण करने में मुझे कुछ झिझक, संकोच होता है। इन अवसरोंमेंसे यह एक अवसर है। गांधी के विषयमें इतने भाषण कर चुका हूं कि अब कौनसी नई चीज कहूं?—मेरे सामने यह प्रश्न रहा है। अभी अभी देशबंधु चित्तरंजनदासकी जन्मशताब्दी हुई। गांधीने उनकी मृत्यु के बाद उनपर दो लेख लिखे थे। दूसरे लेख के आरंभ में ही कहा, "एक ही विषय पर अनेक मौलिक लेख लिखनेकी मेरी क्षमता सीमित है।" गांधी जब अपने विषयमें यह कह सकता है, तो मुझ जैसा आदमी और भी अपने आपको संकोच में पाता है। एक ही व्यक्तिके बारे में आखिर बार बार क्या कहूँ? पिछला वर्ष गांधी-जन्म-शताब्दीका वर्ष था। इस वर्षमें भी मुझे कई भाषण करने पड़े। हर भाषणके समय मुझसे एक ही बात कही गई—"आप यह कहिये कि आज की परिस्थितिमें गांधी कहांतक समयानुकूल है? हमारी इस परिस्थितिमें गांधी की उपयुक्तता कितनी है? आज के संदर्भमें गांधी कितना प्रस्तुत है?"

बहुत विचार करने के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि यह विषय अपने में बहुत गलत विषय है। जीवनकी समस्याओं पर इस तरह विचार करना ही अपनेमें एक बहुत गलत चीज है। संदर्भ हमारा है। इसमें हमको गांधीकी उपयुक्तता का विचार नहीं करना है, बल्कि गांधीने जिसको Question of questions कहा है—एक दूसरे संदर्भमें—सारे प्रश्नोंमें मुख्य प्रश्न आज यह है, कि क्या आजके संदर्भमें जीवनकी ही कोई उपयुक्तता है? Is man relevant? Is life relevant? यह मुख्य प्रश्न है। जितनी समस्यायें आज हमारे सामने उपस्थित हैं, इन सारी समस्याओंके मूलमें यह समस्या है। साहित्यिकोंने यही शिकायत की है कि आज मनुष्य और उसके जीवनका क्या कोई प्रयोजन है? साहित्यिकों के दो संप्रदायोंके प्रतिनिधियोंका उल्लेख मैं करूंगा। एक टी. एस. इलियट। अब यहां तो उमाशंकर भाई बैठे हुए हैं। उनके सामने मैं साहित्यिकोंकी बात कर रहा हूं। कुछ धृष्टता अवश्य करता हूं। यों मैं टी. एस. इलियट को बहुत प्रगतिशील साहित्यिक

नहीं मानता, रायलिस्ट था, राज्यवादी था, केथोलिक भी था। फिर भी उसने आजकी परिस्थितिके विषयमें जो कुछ कहना था, वह अपनी पुस्तकोंके शीर्षक द्वारा ध्वनित किया : 'Waste land', 'Hollow Men'. यह ऊसर भूमि है उसर भूमि है और इस पर रहनेवाले जितने मनुष्य हैं, वे सब पोले हैं, खोखले हैं, थोथे हैं।'

हेनरिक इब्सेन ने अपने 'पीरगिंट' नामक नाटक में वर्णन किया है कि पीरगिंट का व्यक्तित्व कैसा था? वह प्याजकी तरह का था। छिलके के बाद छिलके उतारते जाओ तो भीतर कुछ बचता नहीं है। इलियट ने इसी प्रकारका कुछ संकेत किया और शिकायत भी की है।

दूसरा संप्रदाय आधुनिक साहित्यिकोंका है। हेनरी मिलर जिस संप्रदायका John, the Baptist दीक्षागुरु कहलाता है उसकी एक पुस्तक है 'Murder the murderer'। जो कुछ उसने कहा है, सही कहा है। उसने आजके जमानेका वर्णन किया है—'Airconditioned nightmare—वातानुकूलित विभीषिका।' मनुष्यको भयभीत करनेवाली परिस्थिति है।

तीसरा भी एक विचार है–शिक्षणशास्त्रियोंका, जैसे हर्बर्ट रीड। उसने आजकी परिस्थितिका वर्णन करते हुए कहा है कि The spiritual emptiness of our technological paradise. आजका हमारा जीवन एक यांत्रिक स्वर्ग है, लेकिन इसमें एक आध्यात्मिक शून्यता, रिक्तता है। यह सारी परिस्थिति कहांसे आई? जीविकाकी आकांक्षा परितृप्त होने के बाद जीवन की आकांक्षा शेष रह गई। और यह सारे देशोंके लिए, सारे समाजोंके लिए लागू है। जो समाज अपने को लोकतंत्रवादी समाज कहलाते हैं, उनके लिए भी और जो समाज अपने आपको समाजवादी या साम्यवादी समाज कहलाते हैं, उनके लिए भी। इसलिए सारे संसार में एक सांस्कृतिक क्रांति की आकांक्षा है। जीवनकी जितनी अपेक्षाएं या आकांक्षाएं थीं उनकी परिपूर्ति होनेकी संभावना यंत्र-युगने उपस्थित कर दी। अब मनुष्यों में अगर विग्रह न रहे, कलह न रहे, तो कोई कारण नहीं है कि कहीं भी दुर्भिक्ष रह जाए। सभी जगह मनुष्यों के लिए सुखकी सामग्री उपलब्ध हो सकती है। विज्ञान ने इस संभावना को उपस्थित कर दिया। लेकिन उसके बाद की आकांक्षा है—जीवन की। इस आकांक्षा को परिपूर्ति कैसे हो? और जितने आज सुखी देश हैं, उनमें यह आकांक्षा बड़ी तीव्रता – उत्कटतासे आज अभिव्यक्त हो रही है।

जीविका की समस्या के समाधान का मुख्य लक्षण है समृद्धि। भौतिक विज्ञान और यंत्र-विज्ञानने योरप-अमरिका में समृद्धि की जगह अतिप्रचुरता उपस्थित की है, जिसका परिणाम पहले तो विलासिता में हुआ, परंतु अब भोगलिप्सा का स्थान अतितृप्तिने ले लिया है। वहां का मनुष्य अघा गया है, भोग से तंग आ गया है। भोग-लालसा का परिणाम यह हुआ कि सारा का सारा समाज Production Centred—उत्पादनकेंद्रित और कमोडिटी-ग्रोडी—वस्तुलोलुप बन गया। यह वर्णन समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है। जहां अति-प्रचुरता है, वहां वस्तुओं का लोभ अधिक दिनतक ठहर नहीं सकता। लोग कहते हैं, कि मनुष्योंको सारे उपभोगके पदार्थ और साधन उपलब्ध हो जायँ तो संयम समाप्त हो जायेगा। परंतु, मेरा यह विश्वास रहा है कि प्रचुरता चाहे जितनी क्यों न हो, मनुष्य की भोग-शक्ति सीमित है और भोग-शक्ति ही नहीं, भोग की आकांक्षा भी सीमित है। इसलिए प्रचुरता से मुझे भय नहीं हैं। इस समय योरप-अमरिका में अतिप्रचुरता के फलस्वरूप अतितृप्ति है और परिश्रम के प्रति अरुचि के कारण rebotism याने यांत्रिकता है। इससे मनुष्य ऊब अवश्य है, लेकिन आज वहां केवल boredom—उकतान नहीं है। और मैं यह पूरे जगत के लिए कह रहा हूं। अमरिका या रूस या चीन सबके लिए समान रूपसे यह मेरा वर्णन लागू है। मनुष्य केवल ऊब गया है, अब तबीयत नहीं लगती समय के साथ क्या किया जाए?—इतना ही प्रश्न उनके सामने नहीं है। प्रत्युत उसके मनमें जीवन की सुरक्षितता के विषय में संदेह पैदा हो गया है। 'महद्भयम् वज्रमुद्यतम्'—मानो आकाशमेंसे वज्र गिरनेवाला हो। एक विभीषिका उसके सामने है। उसकी दो प्रतिक्रियाएं हैं। जहां जीविका का आश्वासन है वहां जीवन का आश्वासन नहीं। जहां गरीबी और बेकारी है वहां जीविका का आश्वासन भी नहीं है और जीवनका भी आश्वासन नहीं है। तो एक चिन्ता अस्तित्व की है और दूसरा भय संहार का है। इन दोनों मेंसे जो मनुष्य का मानस बना है, उस विकृत मानस के परिणाम आज हम देख रहे हैं।

इसलिए आर्थिक क्रांति के साथ साथ ही सांस्कृतिक क्रांति आवश्यक है, आर्थिक क्रांतिके बाद नहीं। समाजवादी क्रांति सम्पन्न हो जाने के बाद की सांस्कृतिक क्रांति नहीं। यह क्रम आजतक वैज्ञानिक माना गया, लेकिन अब इतिहासमें हम ऐसे मुकाम पर पहुँच गये हैं कि जहां या तो सामाजिक और आर्थिक क्रांतिके साथसाथ सांस्कृतिक क्रांति होगी या फिर

दोनों क्रांतियां नष्टभ्रष्ट हो जायेंगी, कलुषित हो जायेंगी। ऐसे मुकाम पर आज सारा संसार, सारा मानवसमाज पहुंच गया है। उसका वर्णन आधुनिक विचारकोंने किया है। आधुनिक से मेरा मतलब है, बिलकुल आधुनिकतम। आजकाल बहुत से तरुण क्रांतिकारी लेखक क्रांतिके विषय पर गंभीर चिंतनात्मक साहित्य प्रकाशित कर रहे हैं। उनमें से एक हैं आंद्रे जॉर्ज। उसने "Reflections on the French Revolution-1968" पुस्तकमें एक निबंध लिखा। ये तरुण लेखक अब इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि-"For the first time in the history of man, man's survival depends on his humanity." इतिहास में पहली बार अब मनुष्यका जीवित रहना ही उसकी मनुष्यता पर निर्भर है। और मनुष्यताका वर्णन दूसरे लेखकोंने किया हैं। The sense of belonging —हम एक-दूसरे के कुछ लगते हैं, अर्थात् एक-दूसरे के साथ नातेदारी और एक स्वभावसिद्ध पारस्परिकता—instinctive mutuality.

दूसरा एक समाजशास्त्री है ॲश्ले मोन्टेग्यु। डार्विन का सिद्धांत है—struggle for life—जीवनार्थ संघर्ष। मोन्टेग्यु कहता हैं कि केवल अपने जीवन के लिए संघर्ष इतना ही जीवन नहीं है। इसके साथ साथ है "struggle for the life of another"—दूसरे के जीवन के लिए संघर्ष। अगर यह न होता तो लेनिन, स्टालिन, माओ भी पैदा न होते। मतलब सिर्फ अपने ही जीवन के लिए संघर्ष नहीं, दूसरे के जीवन के लिए भी संघर्ष। यही पारस्परिकता है। प्रिन्स क्रोपट्किनने इसे unconscious mutualism' कहा। Unconscious—जो मनुष्य के स्वभाव में ही निहित हैं।

जब मैं गांधी के बारेमें सोचता हूँ, तो मुझे कुछ ऐसा मालूम होता हैं कि संसारमें युगों के बाद एक स्वस्थ मानव आया। स्वस्थ मानवसे मेरा मतलब है normal human being। एवरेज—औसत नहीं। एवरेज—औसत केवल गणित की कल्पना है, मॅथेमेटिकल फिक्शन है। अब कोई यह कहे कि भारतवर्ष के मनुष्यका औसत आयुर्मान ४२ वर्ष है, तो तो मैं ३० साल अतिरिक्त जो गया। उसी तरह आरकेटाइप एक आदर्श है, लेकिन नॉर्मल —एक स्वस्थ मानव है। और मैं ऐसा मानता हूं कि जिस स्वस्थ मानवता की संसार को आज आवश्यकता है, उसकी झांकी हमको गांधीकी विभूति में मिलती है और इसी को मैंने गांधी का तत्त्व कहा है।

विद्यापतिने 'पुरुष-परीक्षा' के नामसे कुछ वीर-कथायें लिखी हैं। उनमें दानवीर कथा है, युद्धवीर कथा है। उसने कहा है कि वही मनुष्य है जो 'धीरः सुधीः सुविद्यश्च पुरुषः पुरुषार्थवान्'। गांधी के विषयमें अगर सोचने लगें तो गांधी को क्या कहा जाय? गांधी के व्यक्तित्वमें ऐसी कौनसी चीज थी जिसे हम उसका distinctive characteristic—अनन्य साधारण लक्षण कह सकें? उस की विशिष्टता कह सकें? यह विशेषता भी ऐसी होनी चाहिए जो आजकी हमारी समस्याओं के लिए उपयोगी हो, हमारे संदर्भ के साथ कुछ उसकी सुसंगति हो। क्या इस प्रकार की कोई विशेषता हम गांधी के व्यक्तित्व में खोज सकते हैं? एक चीज हमको करनी होगी। यह समझना होगा, कि गांधी के व्यक्तित्वमें जितने संस्कार थे, उनमें गांधी का गांधीत्व नहीं था। गांधी के सनातनी हिन्दुत्व में गांधी का गांधीत्व नहीं है, क्योंकि सनातनी हिन्दुत्व इस देशके करोडों लोगों में है, परंपरागत नैतिकता और सदाचार के संस्कार गांधी में थे। गांधी का सत्त्व या उसको विभूतिका (Quintesance) सारभूत तत्त्व इसमें भी नहीं है। जिस सभ्यता में गांधी पैदा हुआ और पला उस सभ्यताके कुछ संस्कार भी गांधी में थे। उन संस्कारों को भी अलग कर देना है। इसके बाद क्या बच जाता है? बचपनमें कुछ संस्कार गांधी पर बहुत प्रबल हुए थे। एक था हरिश्चन्द्र का और दूसरा प्रह्लाद का और तीसरा था श्रवण का। इन तीन महापुरुषों के चरित्र के बहुत दूरगामी, चिरस्थायी परिणाम गांधी के चित्त पर हुए। इसी तरह हमारे प्राचीन साहित्य से और सामाजिक परंपरा से अन्य कुछ संस्कार भी गांधीने पाये।

गांधी की अहिंसा के विषय में बहुत चर्चा होती है, लेकिन गांधी मुख्य रूपसे अहिंसानिष्ठ व्यक्ति नहीं था। गांधी का सत्त्व अहिंसा में नहीं है। गौतम बुद्धका, भगवान महावीर का सत्त्व अहिंसा में हो सकता है। भगवान ईसा मसीह का हो सकता है। सम्राट् अशोक का भी हो सकता है। लेकिन गांधीका सत्त्व अहिंसा में नहीं था। गांधीकी मूल प्रकृति सत्यनिष्ठा की थी। लेकिन परंपरागत सत्यनिष्ठा और गांधी की सत्यनिष्ठामें एक बहुत बड़ा फर्क है। गांधी की सत्यनिष्ठा पर मैंने एक दफा भाषण किया था, लेकिन जबसे एरिक एरिक्सन की किताब निकली, जिसमें एक तरह से गांधीका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है, तबसे गांधी के सत्य के बारेमें भाषण करनेमें मुझे हिचक होती है।

गांधी की सत्यनिष्ठा एक हदतक संस्कारजन्य थी, परंतु उसके वैशिष्ट्यका वर्णन ही करना हो तो उसको प्रयोगशीलतासे करना होगा। महर्षि अरविंद को किसीने महायोगी कहा, कुछ दूसरों को योगी कहा, परंतु गांधी प्रयोगी था। सत्य के शोध में प्रयोगवीरता गांधी को विशेषता थी। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जहां प्रयोगवीरता होगी, वहां कोई शास्त्र और कोई विधान परम प्रमाण नहीं माना जा सकता। प्रयोगवीरता की यह विशेषता हैं। शास्त्र मनुष्य के सत्त्व का नाश करता है, चाहे कुरान हो, चाहे भगवद्गीता हो, या बाइबल हो, या Ten Commandments हो। जो लिखित शास्त्र है, जो धर्मग्रंथ है, जो धार्मिक संस्था या संगठन है, वह मनुष्य की आत्मा का हनन करता है। सारे के सारे वेद त्रैगुण्यविषय हैं। तुझे तो निस्त्रैगुण्य होना है—भगवानने अर्जुन से कहा। क्यों होना है? इसलिए कि हर परिस्थिति अपूर्व होती है, हर अवसर अप्रतिम होता है, अद्वितीय होता है। अपूर्व परिस्थिति में और अद्वितीय अवसर पर मनुष्य जो आचरण करेगा, उसके तीन प्रकार हैं। एक reactions—प्रतिक्रिया द्वारा, दूसरा response जो जवाबों में आता है और तीसरा revenge प्रतिशोधात्मक —बदला लेने के लिए किया जाता है। किसीने मुझे एक तमाचा मारा तो कुछ भी विचार आनेसे पहले मैंने तड़ाकसे दूसरा तमाचा मार दिया। आचरण का ओर एक भेद है, जिसे आप कर्तव्य कहते हैं। कर्तव्य प्रयोगात्मक होता है, उसमें विकार नहीं होता, अहंकार नहीं होता। लेकिन यह भी कर्म नहीं है, जिसे हम Creative actions—सृजनात्मक कर्म कहते हैं— ऐसा कर्म जिसमें से मनुष्य के सत्त्व का विकास हो।

प्रयोग इन सबसे अलग है। प्रयोग में एक स्वयंप्रेरणा होती है, एक स्वयंस्फूर्ति होती है। इसका थोड़ा वर्णन एक पुस्तक में आता है। Murder, the Murderer में। उस पुस्तक में इस सिलसिले में एक आख्यायिका है। प्रायोगिकता, प्रयोगशीलता गांधी में थी। 'योगः कर्मसु कौशलम्' कर्म में कुशलता योग है, लेकिन प्रयोग कुछ आगेकी चीज है। वह केवल कर्म में कुशलता—चतुराई नहीं है। प्रयोगात्मक कर्म में एक क्रांतिकारी प्रतिभा की आवश्यकता होती है। हर नई परिस्थिति में, हर नये अवसर पर मनुष्य की कृति में स्वयंप्रेरणा हो और समग्रता भी हो, इसकी आवश्यकता है। इस परिप्रेक्ष में सोचेंगे तो आपकी समझ में आयेगा कि गांधी का सत्याग्रह या गांधी की अहिंसा अपने आपमें एक नया सामाजिक मूल्य था। सामाजिक

मूल्य से मेरा मतलब है, ऐसा मूल्य जो मनुष्यों के सम्बन्धों के आयामों को बदल देता हो। यह है सांस्कृतिक क्रांति।

आयजाक डाडशर की एक किताब है "Unfinished Revolution"—अपूर्ण क्रांति—अधूरी क्रांति। अधूरी क्रांति क्यों? इसलिए कि संदर्भ-परिवर्तन हो गया, लेकिन मूल्य-परिवर्तन नहीं हुआ। मूल्य-परिवर्तन अभिव्यक्त होगा मनुष्यों के सम्बन्धों में और वही होगी सांस्कृतिक क्रांति।

जीवन के सम्बन्धों में तीन आयाम हैं। मनुष्य का प्रकृति के साथ—सृष्टि के साथ सम्बन्ध, मनुष्य का दूसरे जीवों के साथ सम्बन्ध और मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध। इन तीनों आयामों में क्या जीवन के सत्य के प्रयोग हो सकते हैं?—यह गांधी के जीवन की खोज थी। मैंने आपसे निवेदन किया कि गांधी कोई अहिंसाका संदेश लेकर नहीं आया था। गौतम बुद्ध का एक दर्शन था—संदेश था। महावीर का एक दर्शन था। गांधी कुछ घर से निकलकर गया नहीं था। वकालत करने गया दक्षिण आफ्रिका में। वहां अपमानित हुआ। वहां उसके सत्त्व के संरक्षण के लिए, आत्म-मर्यादा की संरक्षण के लिए कोई साधन नहीं था, कोई उपाय नहीं था। जीवन की एक प्रत्यक्ष परिस्थिति में से और हृदय की वेदना में से प्रतिकार को एक नई पद्धतिका आविष्कार गांधीने किया। इसे ही मैं उस की प्रयोगशीलता कहता हूँ। वह व्यावहारिकता नहीं है। प्रयोगशीलता व्यावहारिकता से अलग चीज है। यह व्यवहारवाद नहीं है। यह आविष्कार गांधी के जीवन में से निष्पन्न हुआ, उसने किसी शास्त्रसे उधार नहीं लिया। उस नई प्रतिकारपद्धति को एक नित्य प्रगतिशील शास्त्र और कला के रूप में विकसित करने की चेष्टा उसने अपने प्रयोगों द्वारा की। उसने कहा, मैं तो सत्य की खोज में हूँ और सत्य की खोज में ही आत्मा का आविष्कार है। आत्मा की व्याख्या करते हुए कहा—'मेरे लिए प्रेम ही आत्मा है। इस सत्य या आत्मा की खोज में निकला और यह खोज करते-करते मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि अहिंसा के बिना यह खोज सफल नहीं हो सकती।' लेकिन यह अहिंसा क्या है? क्या गांधी की अहिंसा वह अहिंसा है, जिसने मनुष्य को अन्याय और अपमान के सामने सिर झुकाना सिखाया? गांधीने अपनी अहिंसा की प्रक्रिया में सद्-व्यवहार को the science of surrender कहा, submission नहीं, शरणागति नहीं कहा। प्रणति, प्रणिपात, समर्पण शुभ व्यवहार है, लेकिन शरणागति नहीं। इसका एक परिणाम बहुत बड़ा निकला है। गांधी के

जीवन में शस्त्र-निरपेक्षता का प्रतिपादन है, लेकिन शस्त्र-निषेधका प्रतिपादन नहीं है। शस्त्र-निरपेक्षता और शस्त्र-निषेध में जो अंतर है, उसे हमें समझना चाहिए। आज जो विश्वव्यापी भय मनुष्य के चित्तको व्याप रहा है, उसकी दो प्रतिक्रियाएं हैं। एक तो है अविवेकी अमर्यादित हिंसा—निरंतर आक्रमण की प्रवृत्ति। जिस हिंसाका कोई प्रयोजन नहीं है, कोई कारण नहीं है, ऐसी हिंसा का स्फोट हो रहा है। यह आक्रमणशीलता का परिणाम है। एक तरफ यह मनोवृत्ति है और दूसरी तरफ मनुष्य इतना डर गया है कि विफलताकी भावनाने उसे ग्रास लिया है। जब विज्ञान का आविर्भाव हुआ, तो उसका स्वागत Century of hope के रूपमें हुआ। माना गया कि The age of reason—बुद्धिमत्ता का युग आ गया तो अब आशा का युग आ गया है। लेकिन बीसवीं शताब्दी आते ही ह्युलेट जोन्सनने लिखा कि 'It is an age of the frustration of science and failure of technology—यह युग विज्ञान की निष्फलता का और यंत्रशक्ति की पराजय का है।' यंत्र और विज्ञान की संभावनाएं क्या हैं, यह अलग चीज है। मनुष्यने विज्ञान और तकनीक का जो उपयोग किया है, उसके परिणाम-स्वरूप विफलता का और पराजय का युग आ गया। अब इस विफलता में से एक जिज्ञासा पैदा होती है। यह तीसरी प्रतिक्रिया है। आज जो एक विश्वव्यापी आशंका है, मनुष्यमें जो विश्वव्यापी भय है, उसमें से एक तीसरी चीज निकली है—Interrogation, Question. मैं संशय नहीं कह रहा हूँ, doubt नहीं कह रहा हूँ। Question. आज जीवन के विषय में एक जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा के प्रतिनिधि आप को आज सारी दुनिया में दिखाई देते हैं। पश्चिम में जो संप्रदाय निकले हैं कुछ हिप्पीज के, कुछ बीटल्स के, ऐसे सारे संप्रदाय निकले हैं। इनमें से किसी का भी निषेध मैंने नहीं किया है। मैंने इनको समझनेकी कोशिश की है। यह लक्षण एक जिज्ञासा का है, एक wonder की मनोवृत्ति का है। गांधी जानते नहीं थे इन सारी मनोवृत्तियों को, लेकिन उनकी सहज अंतर्दृष्टिने शायद इसे भाप लिया था। इन सारी परिस्थितियों में मनुष्यको जिस प्रकारके मानसकी आवश्यकता थी, वह मानस गांधीने पाया। हिंसा और अहिंसा का हमारे यहां आज बहुत विवेचन हो रहा है। इसलिये गांधी प्रस्तुत या अप्रस्तुत है, इसकी चर्चा होती है।

एक हिंसा व्यावसायिक हिंसा है, जैसे कसाई की, hangman की, जल्लाद की। शिकारी भी केवल खेलके लिए जानवरों को मारता है। व्यावसायिक और आखेट की हिंसा मानवीय मूल्यों के विषय में colorblind है, अंधी है। दूसरी एक हिंसा है, जो विकारजन्य होती है। गुस्सा आया तो हिंसा होती है। तीसरी का मैंने आपके सामने वर्णन किया—कर्तव्यमूलक। धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर, समाज के नाम पर यह हिंसा होती है। विकारमूलक हिंसासे भी कभी-कभी कर्तव्यमूलक हिंसा अधिक भयानक होती है। इसका कारण यह है कि विकारमूलक हिंसा में, जो हिंसा करता है उसके चित्तमें पापकी ग्लानि रहती है कि मैं पाप कर रहा हूँ, पाप कर रहा हूँ; लेकिन जो पुण्यात्मक हिंसा होती है, इसमें तो कभी किसी तरह का पश्चात्ताप होता ही नहीं। इसलिये वह अधिक भयानक है। भगवद्गीता हाथ में लेकर, कुरान हाथ में लेकर जो हिंसा करता है, वह जब दूसरे संप्रदाय-वालों को हत्या करता है, तो वह मानता है कि मैं तो स्वर्ग को जानेवाला हूँ। मेरे लिये तो स्वर्ग का द्वार खुल गया है। यह अधिक भयानक है। इसके बाद भी एक और हिंसा है, जो संपूर्ण रूपसे क्रूर हिंसा है, जिसमें क्रौर्य ही क्रौर्य है—निष्प्रयोजन क्रौर्य। अभी एक मुकदमा चल रहा है एक आदमी के ऊपर। उसने कितनी हत्यायें कीं, जिनमें न व्यवसाय है, न खेल है, न विकार है और न कर्तव्य की भावना। यह हिंसा कहां से आयी? आज की युद्धनीति में केवल संहारात्मक हिंसा का आयोजन है। ऐसे शस्त्रास्त्र हैं, जो केवल संहार ही कर सकते हैं। इसमें से कारणरहित क्रूरता का वातावरण और मनोवृत्ति पैदा हुई। उसमें किसी प्रकारको मानवीय भावना के लिये कोई अवसर नहीं है, क्योंकि यह युग है mutual suspicion—परस्पर संशय का—मनुष्यको मनुष्य में विश्वास नहीं, और mutual terror का—एक दूसरे से सब डरते हैं। इसमें से मानवताका आविर्भाव नहीं हो सकता। इसलिये इस निष्कर्ष पर आजके सारे समाजशास्त्री पहुँचे हैं कि मनुष्यको अगर जीवित रहना है, तो वह आज एक ही अधिष्ठान पर जीवित रह सकता है, वह है उसकी मानवता। आपसे निवेदन यह है कि गांधीने अपने प्रयोगोंसे इस मानवता की प्राणप्रतिष्ठा का उपक्रम किया, मनुष्यों के हृदयों में नये आयाम दाखिल करने की कोशिश की।

१९२५-२६ के लगभग हमारे नागपुर में जनरल आवारीने शस्त्र-सत्याग्रह शुरू किया। गांधीको उन्होंने और श्री सांबमूर्तिने लिखा—"तुम तो कहते थे

कि बलपूर्वक निःशस्त्रीकरण जहां पर हुआ हो, वहां पर शस्त्र-धारण करने के अधिकार के लिए मैं सत्याग्रह करूंगा।" गांधीने कहा —"अवश्य करूंगा, लेकिन शस्त्र हाथमें लेकर सत्याग्रह नहीं करूंगा, क्योंकि शस्त्र मेरे लिए निषिद्ध है।" आज सारा मानवसमाज उसी मुकाम पर पहुँच गया है, जिसका संकेत गांधी के इस उत्तर में है। अनियंत्रित हिंसा, सहेतुक शस्त्र-प्रयोग और सुनियंत्रित दण्ड-प्रयोग—ये तीनों अलग अलग चीजे हैं। संगठित, समाजमान्य और सुनियंत्रित दण्ड-प्रयोग और शस्त्र-प्रयोग के लिए समाजमें स्थान है। पुलिस है, सेना है। मैं देश के प्रति-रक्षणकी बात नहीं कर रहा हूँ। समाजकी आंतरिक शांति के लिए जो बल-प्रयोग किया जाता है, जो शस्त्र-प्रयोग किया जाता है, वह विहित माना गया है। परन्तु यह हिंसा, जो अकस्मात फूट पड़ती है, सारे समाजशास्त्री आज उसके अध्ययन में लगे हुए हैं। इस हिंसाकी राजनीति और चौराहे की हिंसा के क्या कारण हो सकते हैं। इन सारे कारणों को आपके सामने नहीं रख रहा हूँ। एक मूल चीज मैंने आपके सामने रखी। वह यह है कि आज, जो विश्वव्यापी विभीषिका संहार की संभावनाके रूप में मनुष्य के सामने नित्य खड़ी है, वह एक वज्रके समान, सिर पर लटकते हुए खंजर की तरह है। मनुष्यजाति के सर्वनाश की संभावना में से आज अनेक प्रकारकी हिंसाएं प्रस्फुटित हुई हैं, उनमें से मनुष्यजातिको उबारने के लिए गांधीने एक नई प्रक्रिया का प्रयोग किया।

यह अंतिम समस्या मानवता के सामने आज है। सांप्रदायिक दंगों में जो हिंसा होती है, उसके विषयमें मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं केवल उस शस्त्र-प्रयोग के विषय में बोल रहा हूँ, जिस की अनिवार्यता आज समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में मानी जाती है। आजतक क्रांतिका विचार यहीं तक पहुँचा है कि हिंसा समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में अनिवार्य है। लेकिन डाडशरने अपने एक लेखमें ठीक ही कहा है कि हमारी प्रतिज्ञा क्या है? हमारा संकल्प क्या था? डाडशर लिखता है–" The ideal of Marxism is that of the Classless Society in which violence should cease for ever as the necessary and permanent in the regulation of human relationships." मार्क्सवाद का आदर्श ऐसा वर्गहीन समाज है, जिसमें मानवीय संबंधों के नियमन के लिए हिंसाकी नित्य अनिवार्यता हमेशा के लिए समाप्त हो जावेगी। परंतु

क्या ऐसे समाज की स्थापना के लिए हिंसा अनिवार्य रहेगी? इस प्रश्न का उत्तर वह न दे सका। यह गांधीकी ऐतिहासिक देन थी। जिस प्रकार के समाजकी हम स्थापना करना चाहते हैं उसके लिए अगर हिंसा की आवश्यकता रहेगी, तो एक क्रांतिके बाद फिर दूसरी क्रांति की आवश्यकता रहेगी, जो क्रांति शायद ही हो सके। इसलिए समाज-परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया चाहिए, जिससे मनुष्योंके सम्बन्धोंमें भी क्रांति हो। याने समाज-क्रांति के दौरान, समाज-क्रांतिकी प्रक्रियामें ही ऐसी विशेषता होनी चाहिए। इसको खोज पश्चिम के तरुण आज कर रहे हैं। रूस और चीनमें भी आज यह खोज है कि क्या क्रांति की प्रक्रियामें से हिंसाकी अनिवार्यता समाप्त हो सकती है? इसमें गांधीके प्रयोगोंमें से परिणाम यह निकला कि ऐसी प्रक्रियाका आविष्कार संभव ही नहीं, वरन व्यवहार्य है। आप चाहें तो उस प्रक्रिया को अहिंसक कहने के बजाय शस्त्र-निरपेक्ष वीरता कहें। शस्त्र-निरपेक्ष वीरता की दीक्षा गांधीने भारतवर्षको दी है। गांधीने अहिंसक वीरताकी दीक्षा भारत को दी है। मैं इसे मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि गांधीके प्रयोगोंकी बदौलत लोग कायर बनें। गांधी के साथियोंमें से कौन ऐसे हैं, जो मीरु हों, जो डरपोक हों?

शस्त्र-शक्ति को जब मनुष्य-समाजके विकासका साधन माना गया, उस समय शस्त्र-शक्ति वीरता की पोषक मानी जाती थी। उसका नाता क्रूरता के साथ नहीं था। शूरता, वीरता जितनी अधिक होगी, उतनी ही क्रूरता कम होगी। शस्त्र-शक्ति की यह विशेषता है। लेकिन आज जो हिंसा हो रही है, इसमें संहारकी ही भूमिका है, क्रूरता ही है। केवल क्रूरता, संहार ही नहीं, इसमें एक प्रकारकी निर्घृणता है। निर्घृणता क्रूरतासे भी निकृष्ट है।

आज जीवन ऐसे घोर संकटमें है, इसलिए मनुष्य संरक्षण-परायण बन गया है। जहां प्रतिरक्षण की भूमिका होती है, वहां मनुष्यका मनुष्य के साथ सम्बध नहीं हो सकता। संरक्षणकी भावना मनुष्यों को एक-दूसरे से अलग करती है। संरक्षणकी भावना का नाम ही राक्षसी भावना है, आसुरी भावना है। हमारे पुराणोंमें जो राक्षस हैं, वे सारे के सारे रक्षणाकांक्षी थे। सारी तपस्या एक ही वरदान के लिए की थी कि हे भगवान, मुझे कोई मार न सके। इसके सिवा कोई दूसरा वरदान मांगा ही नहीं। मनुष्यको संरक्षण की आवश्यकता जबतक रहेगी, तबतक नये-नये शस्त्रास्त्रों की खोजका

कभी अंत नहीं होगा। विनोबा से एक अपढ़ किसानने पूछा था कि एटम बम अगर शेरों और सिंहों को मारने के लिए नहीं है, तो उसकी खोज किसलिए हुई है? विनोबाने उससे कहा कि यह तो मनुष्योंको मारनेके लिए निकला है; तो उसने कहा कि "मनुष्य को तो नाखूनसे भी मार सकते हैं। उसे मारनेके लिए एटम बम की खोज क्यों करनी पड़ी?" इसका कारण बर्नार्ड शॉने बतलाया था: Among all beasts of prey, man is the most ferocious—जितने हिंसक प्राणी हैं, उनमें सबसे हिंस्र मनुष्य है। इसमें एक संकेत है, जो संकेत गांधी के जीवन में अभिव्यक्त हुआ। जिस मनुष्यको मारनेके लिए नित्य नूतन शस्त्रास्त्रों की खोज करनी पड़ती है, वह मनुष्य अजेय है, वह अमर है। Men can be destroyed but 'man' cannot. मनुष्यों का संहार हो सकता है, लेकिन 'मनुष्य' का नहीं। यह चरम आस्तिकता है। मनुष्य के जीवनमें छिपी हुई संभावनाओं में जिसकी श्रद्धा है वही आस्तिकता है। गांधीकी सत्यनिष्ठामें से ईश्वरनिष्ठा आई और उसकी अभिव्यक्ति हुई उसके प्रयोगोंमें, मानवनिष्ठा के रूपमें। मानव-निष्ठा के अधिष्ठान पर मनुष्यों और मनुष्यों के संबंधों का परिवर्तन—सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक संबंधों का मानवता के अधिष्ठान पर परिवर्तन, गांधीके प्रयोगों का एक मात्र उद्देश्य था। गांधीका अपना कोई दर्शन नहीं है, जिसको लेकर वह संसारमें आया हो। उसका अपना कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, कोई अपनी अलग विचारप्रणाली नहीं है। वह एक शुद्ध जीवननिष्ठ प्रयोगवीर था। जीवननिष्ठा जब एक सामाजिक मूल्य बन जाती है, तब उसका मुख्य आयाम मानवनिष्ठा होती है। सारे प्राणियों के लिए आदर की भावना (Reverence for all life) तो है ही; लेकिन विशेष बल है, मनुष्य के जीवन की प्रतिष्ठा पर, मनुष्य के जीवन के लिए आदर पर। इसे मैंने गांधी का सत्त्व माना है, उसकी प्रयोगवीरता का प्रयोजन माना है। जीवनके सिवा और कोई प्रयोजन नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं, कोई दर्शन नहीं, कोई अलग संकल्प नहीं। मनुष्य एक-दूसरे के साथ जी सके, मनुष्य एक दूसरेको जिलावे, पारस्परिकता के आधार पर, और यही आजके सारे क्रांतिकारियों की खोज है।

आज के क्रांतिकारियों की खोज कहांतक पहुँची है, वह कौन-कौनसे तरीके, कौन-कौनसी टेकनिक, कौन-कौनसी प्रक्रियाएं आजमाना चाहते हैं, यह एक अलग विषय है। मुझे तो आजके भाषणमें, भूमिका के रूपमें आप

लोगों को सेवामें इतना ही निवेदन करना था कि आजकी जो प्रधान समस्या है—मनुष्य के जीवनके निर्वाह को—उस प्रधान समस्या का उत्तर आप खोजेंगे तो उस खोजमें संभवतः गांधीकी विभूति से आपको नया प्रकाश मिल सकता है। इसी दृष्टिसे गांधी एक विभूति है, एक सत्त्व है, एक फिनोमिनन है। मानवता के इतिहासमें एक नया सत्त्व आया है, जिसे गांधीका नाम दिया गया। उसके प्रकाशमें आज समाज-परिवर्तनकी खोजमें जो तरुण व्यस्त हैं, उन तरुणोंको प्रकाश मिल सकता है।

मनुष्यता का वर्णन किया है एक दार्शनिकने—जीवन की क्षमता सांद्रीभूत हुई, उसे मनुष्यका नाम दिया गया। और मानवका पौरुष उसका सत्त्व जब केन्द्रीभूत हो जाता है, वही तरुणाई है। इस तरुणाई के लिए आजकी परिस्थितिमें, जबकि एक तरफ विफलता और दूसरी तरफ क्रूरता है; जब सारा समाज या तो भयभीत हो गया है या आक्रमणकारी हिंसामें खो गया है, समाज-परिवर्तनकी प्रक्रिया में एक नवीन आयाम का शोध है। विज्ञान के युगमें यह एक आवश्यक आयाम है। गांधी के प्रयोगोंमें वैज्ञानिक युगके लिए अनिवार्य उस आयाम का सजीव संकेत है। इस दृष्टि से गांधी का विचार करें, इस दृष्टिसे नहीं कि गांधी कहांतक relevent था। मानवीय समाजके लिए क्या आज गांधीकी विभूतिमें से कोई प्रकाश मिल सकता है? समस्या हमारी है, जीना हमको है, relevence of life देखनी है, गांधीकी relevence नहीं। इस दृष्टि से अगर हम विचार करेंगे, तो अन्वेषण के, खोजके एक नये अध्याय का आरम्भ हो सकता है।

व्याख्यान २

वर्तमान समस्या की भूमिका और स्वरूप के विषय में कल के प्रास्ताविक भाषण में मैंने थोड़ा विवेचन किया। विज्ञान ने आज ऐसी परिस्थिति उपस्थित कर दी है कि अब कोई समस्या राष्ट्रीय या क्षेत्रीय नहीं रह सकती। सारी की सारी समस्याओं का स्वरूप विश्वरूप है। भगवद्गीता का एक विश्वरूपदर्शनयोगो नाम अध्याय है। एक भी समस्या संसार में ऐसी नहीं है जिसका स्वरूप विश्वरूप न हो। समस्या के इसी विश्वरूप को देखकर मानव अर्जुन की तरह विस्मित और चकित हो जाता है। अर्जुन ने भी कहा था: "मेरी तो बुद्धि ही काम नहीं कर रही है।" वैसी ही परिस्थिति आज मनुष्य की हो रही है। उसकी बुद्धि कुंठित हो गयी है, चकरा गयी है।

चन्द्रमा पर मनुष्य पहुँचा और सारे विश्व में आनंदोत्सव मनाया गया, लेकिन वहां जाने पर मानव ने झंडा फहराया राष्ट्र का—अमरीका का, मानवता का नहीं। चन्द्रमा पर जाकर भी मनुष्य अपने लेबल को नहीं भूल सकता। मनुष्य पर चिप्पी लगी है। उस चिप्पी को वह नहीं भूल सकता। विज्ञान में अगर कोई विशेषता है तो यही कि उसे लेबल मंजूर नहीं है। इसलिए विज्ञान वस्तुनिष्ठ कहलाता है। शूगर इज स्वीट एण्ड सॉल्ट सॉल्ट। केला मीठा है, करैला कड़ुआ है। उसमें कोई फर्क नहीं हो सकता है। यह विज्ञान है। विज्ञान तो वस्तुनिष्ठ है, लेकिन मनुष्य का हृदय और बुद्धि सत्यनिष्ठ नहीं है।

कल मैंने सत्यनिष्ठा का दिग्दर्शन कराया। जीवन ही सत्य है। जीवन के सिवा और कुछ सत्य है ही नहीं। जीवन की एकता ही परम सत्य है। इस एकता का दूसरा नाम प्रेम है। और मनुष्यों के सम्बन्धों में इसकी अभिव्यक्ति करना ही सत्य का प्रयोग है।

आज तो हमारा परिवेश ब्रह्माण्ड ही हो गया है। आज कोई एक क्षेत्र ऐसा नहीं रहा जिसमें ब्रह्मांडव्यापी चेतना आवश्यक न हो। ब्रह्माण्ड-व्यापी विज्ञान में आज ब्रह्माण्डव्यापी प्रबोध की आवश्यकता है। वह प्रबोध ही आज की मानवीय विभूति कहलायेगा। अगर वह ब्रह्मांडव्यापी चेतना न

होगी, तो मनुष्य का संहार रुक नहीं सकता। यह समस्या वास्तविक है, केवल वैचारिक नहीं है। हमें इस सन्दर्भ में ही विचार करना है। यह समस्या कैसे हल हो? इसके लिए आमूल क्रांति अनिवार्य है।

क्रांति के तीन अंग हैं। पहला अंग है संदर्भ परिवर्तन (Changing the contex), दूसरा है मूल्य-परिवर्तन (Change of values) और तीसरा है जिसे गांधी ने हृदय-परिवर्तन कहा था, मनुष्यों के सम्बन्धों में शुद्धीकरण। मनुष्यों के सम्बन्ध निरुपाधिक, निरपेक्ष, स्वाभाविक, स्वयंस्फूर्त होने चाहिए। क्रांति के ये त्रिविध आयाम हैं। इसके लिए जिस प्रतिभा की जरूरत है, वह विधायक और विश्वव्यापी होनी चाहिए। इस प्रकार की प्रतिभा का कुछ आभास, आलोक, हमें गांधी की विभूति में मिलता है। गांधी के व्यक्तित्व में जो संस्कारों का अंश था उसे छोड़ दीजिये। जिस सभ्यता में वह पैदा हुआ और पला उसके जो परम्परागत शिष्टाचार उसके व्यवहार में थे, उन्हें भी छोड़ दीजिये। इसके बाद जो शेष रहता है उसे मैं गांधी की विभूति या गांधी का सत्त्व या गांधी की प्रतिभा (जीनियस) कहता हूँ।

अगर समाज-परिवर्तन या क्रांति अपूर्ण-अधूरी न रहे इस विषय में हम गंभीर रूप से चिन्तित हैं, तो क्रांति संपूर्ण होनी चाहिए, यह हमारा आग्रह रहेगा। सिर्फ परिस्थिति-परिवर्तन की क्रांति अधूरी क्रांति है। फ्रांस और अमेरिका की क्रांतियां Missed revolution या Compromised revolution (खोई हुई या अधूरे समझौते की) क्रांतियां थीं। उनका उद्देश्य ही खो गया या वे समझौते में फँस गयीं। इसलिए प्रतिक्रांति का संभव शाश्वत रहा। इस शताब्दी में दो क्रांतियां हुईं—रूस और चीन में। लेकिन वे भी अधूरी क्रांतियां रहीं। प्रतिक्रियाका अंदेशा रहा। क्रांति के विकास के लिए, पूर्ण क्रांति के लिए चतुरस्र प्रतिभा की आवश्यकता है। केवल इतना काफी नहीं है कि वर्तमान समाज irrelevant हो जाय। वर्तमान समाज मनुष्य के रहने के योग्य, मनुष्यजीवन के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है इतना जो क्रांति सिद्ध कर देती है, वह क्रांति तो है, लेकिन अधूरी क्रांति है। मानवीय संबन्धों के शुद्धीकरण के लिए किस प्रकार के समाज की आवश्यकता होगी यह उसका पूरक अंश है। संपूर्ण समाज-परिवर्तन के दो अंग हैं—वर्तमान समाज को समाप्त कर देना और उसके साथ-साथ नये समाज की बुनियादें डालना। इस अंग को विधायक क्रांति कहते हैं। ये दोनों अंश गांधी की प्रतिभा में दिखाई देते हैं।

सारांश, समग्र समाज-परिवर्तन के लिए मूल्य परिवर्तन संदर्भ-परिवर्तन के साथ होना चाहिए। लेकिन आज जो क्रांतिकारी माने जाते हैं, उनका कहना है कि क्रांति कम से कम दो किस्तों में होगी—पहली संदर्भ-परिवर्तन की और दूसरी हृदय-परिवर्तन की। यह क्रांति की परंपरागत प्रक्रिया रही है। एक आदरणीय मनीषी कहते हैं कि इस देश में क्रांति मार्क्स और गांधी दोनों की प्रक्रियासे होगी। अकेला मार्क्स नहीं, अकेला गांधी नहीं। मार्क्स-गांधी-योग चाहिए। लेकिन पहले मार्क्स, बाद में गांधी। पहले गांधी और बाद में मार्क्स नहीं। इस प्रमेय का गंभीरता से अध्ययन करें।

मार्क्स के प्रधान उद्देश्य संक्षेप में देखें।

मार्क्स के प्रधान उद्देश्यों में से एक था—जो नया समाज होगा उसमें औजारों को प्रतिष्ठा होगी, हथियारों की नहीं। उत्पादन के साधन और उत्पादनके उपकरण क्रांत्युत्तर समाज में प्रतिष्ठित होंगे। उस समाज में शस्त्र नहीं रहेंगे।

जो शस्त्रवादी या युद्धवादी होगा वह क्रांतिकारी हो ही नहीं सकता। मनुष्य के सांस्कृतिक विकास का एक अनिवार्य साधन जिसने शस्त्र और युद्ध को माना वह फासिस्ट हो सकता है, लेकिन मार्क्सिस्ट नहीं हो सकता। क्रांति सम्पन्न होने के बाद समाज से शस्त्रास्त्रों की प्रतिष्ठा समाप्त हो जायेगी। वकत औजारों की बढ़ेगी। लेकिन अगर क्रांति के लिए औजारों को हथियारों की पनाह खोजनी पड़े तो रुतबा हथियार का बढ़ेगा और औजारों की वकत घटेगी। इसलिए क्रांतिकारी चाहे मार्क्स का नाम लेता हो या गांधी का नाम लेता हो, उसे क्रांति का ऐसा तरीका ईजाद करना होगा जिसमें औजारों को हथियारों का मुहताज न होना पड़े। मतलब, परिणामतः क्रांतिकारी न मार्क्सवादी रह जाता है, न गांधीवादी। उसे तो मनुष्यों के बीच जो कलह के बीज हैं, उन्हे मनुष्यों की बलि दिये बिना समाप्त करना है। अतः 'मार्क्स या गांधी?" "पहले मार्क्स या पहले गांधी?" यह विवाद व्यर्थ है। क्रांतिकारी सव्यसाची है। वह मार्क्स और गांधी दोनों के वास्तविक क्रांतिकारी अंशों को ग्रहण करता है। न शैव है और न वैष्णव, न मार्क्सवादी और न गांधीवादी, न हिन्दू, न मुस्लिम, न ईसाई, न सिक्ख, न बौद्ध, न यहूदी।

बड़े दुःख की बात है कि कोई धर्म ऐसा नहीं है जिसने शस्त्र और युद्ध का निषेध किया हो। इस दृष्टि से धर्म क्रांतिकारी नहीं है। एक अर्थ

में गांधी भी अपने को धार्मिक पुरुष कहलाता था, लेकिन उसने धर्म की परिभाषा को ही बदल डाला। विनोबा ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अब धर्म के दिन नहीं रहे। धर्म समाज-परिवर्तन के लिए उपयुक्त नहीं है। आज क्रांतिकारियों में धर्म के प्रति जो विरोध दिखाई देता है उसका यह कारण है।

आज के तरुणों में तीन वर्ग दिखाई देते हैं। एक वे हैं जो वर्तमान समाज में ही स्थान चाहते हैं। ये बहु-संख्या में हैं। ये उपद्रव करते हैं, लेकिन क्रांतिकारी नहीं हैं। ये समाज-परिवर्तन नहीं चाहते। जैसा आज का समाज है, उसी में उन्हें प्रतिष्ठा और सुख चाहिए। दूसरा वर्ग जीवनकी खोज करते-करते परलोकवादी बन गया। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, हरे राम हरे राम, रथयात्रा वगैरह प्रवृत्तियों का आयोजन करता है। यह एस्केपिस्ट हो गया है, क्रांतिकारी नहीं रहा। हमारे देश में अध्यात्म 'एस्केपिस्ट' भी कुछ रहा है। कुछ अध्यात्मवादी, परलोकवादी या अरण्यवादी बन गये। वे जीवन-विमुख हैं। इसलिए समाज के मूल्यों को बदलने की बात उनके सामने नहीं रही। इनके अतिरिक्त तरुणों का और एक वर्ग है जो आज के समाज में रह नहीं सकता। मैं केवल ड्रोपआउट्स, हिप्पीज वगैरह की बात नहीं कह रहा हूँ। यह वर्ग आज के समाज को बदल डालना चाहता है। वह मानता है कि इस समाज की बुनियाद को नहीं बदलेंगे तो जीवन का विकास तो दूर, जीवन का रक्षण ही संभव नहीं है। फिर संबंधों की बात ही कहां रही। सवाल उनके सामने एक ही है कि वर्तमान समाज को बदले कैसे? परिवर्तन कैसे करें? इसकी बुनियादों को बदलते हुए साथ-साथ नये समाज की बुनियादें भी कैसे डालें?

समाज परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रश्न को लेकर संप्रदाय बन जाते हैं। हमारे जमाने में हमें स्कूल में एक कविता पढ़ाई जाती थी। एक देहाती स्कूल के पंडितजी लड़कों को भूगोल का पाठ पढ़ाते हुए बतलाते थे कि पृथ्वी गोल है। लड़कों के दिमाग में बात पक्की जमाने के लिए पंडितजी अपनी सुंघनी की (नास की) डिब्बी निकालकर दिखा देते थे। लड़के सीख गये थे कि पृथ्वी का आकार पंडितजी की सुंघनीदानी की तरह गोल है। एक दिन इन्स्पेक्टर साहब स्कूल में अचानक आये। वह दिन छुट्टी का था। फिर भी लड़कों को घर से बुलाया गया। पंडितजी भी दौड़कर आये। संयोग से इन्स्पेक्टर साहबने पीछे के बेंच पर बैठे हुए एक लड़के से वही सवाल

पूछा : 'पृथ्वी का आकार कैसा है ?' लड़का तैयार नहीं था। हड़बड़ाकर खड़ा हुआ और पंडितजी की तरफ़ ताकने लगा। पंडितजी ने इन्स्पेक्टर साहब के पीछे खड़े होकर चट से नासदानी निकालकर दिखा दी। लेकिन उस दिन पंडितजी दूसरा कोट पहन कर आये थे। उसमें घनीदानी चौकोर थी। लड़के ने जवाब दिया : "और दिन तो पृथ्वी गोल होती है, लेकिन छुट्टी के दिन चौकोर होती है।'

आज भी यही हो रहा है। कोई गांधीवादी दुनिया को गांधी के ढांचे में ढालना चाहता है, कोई मार्क्सवादी उसे मार्क्स की कल्पना के अनुसार बदलना चाहता है। मैं मार्क्स या गांधी की बात नहीं कह रहा हूँ। मार्क्स मार्क्स था और गांधी गांधी था। मैं 'मार्क्सवादी' और 'गांधीवादी' की बात कहता हूं। गांधी गांधीवादी नहीं हो सकता था, मार्क्स मार्क्सवादी नहीं हो सकता था, क्योंकि वे स्वयं गांधी और मार्क्स थे। गांधी ने तो कहा था : मैंने कल जो कहा और आज जो कह रहा हूँ उसमें कोई विरोध हो तो जो आज कहता हूँ उसे सत्य मानो। और गांधी नित्य 'आज' की बात कहते कहते मर गया। उसके बाद का आज तो हमारा ही रहा। आज 'हम' कहते हैं। गांधी कहता था वही अगर हम कहने लगे तो वह 'स्टीरियोटाइप' हो जायेगा। इतिहास वहीं ठिठक जायेगा। घड़ी की सुई रुक जायेगी। दुनिया में आज यही हो रहा है। संदर्भ बदल गया, लेकिन हम गांधी ने क्या कहा था, यही सोचते रह गये।

अतः विश्वको बदलने के लिए, आज की विश्वरूप समस्या को हल करने के लिए आज विश्वचेतना, वैश्विक प्रबोध की आवश्यकता है, ब्रह्मांड-व्यापी प्रतिभा की आवश्यकता है, विश्वाकार हृदय और मन की आवश्यकता है। इसके बहुत नजदीक गांधी पहुँचा था। क्यों ? इसलिए कि गांधी किसी का अनुयायी या शिष्य नहीं था। वह अनेक युग-प्रवर्तकों का उत्तराधिकारी था। अनुयायी और उत्तराधिकारी में फर्क है। अनुयायी अपने गुरु के तत्त्वज्ञान को समाप्त करता है, क्योंकि वह उसे संस्थाबद्ध करता है। उत्तराधिकारी गुरु के तत्त्वज्ञान में संवर्धन और परिवर्तन करता है। तो गांधी मार्क्स का भी उत्तराधिकारी था। राममोहन राय, रानडे, रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद, लोकमान्य तिलक, गोखले, सबका उत्तराधिकारी था, लेकिन किसी का अनुयायी नहीं था। इन सबकी प्रतिभा में जो विशेषताएँ थीं उनको उसने संपन्न और समृद्ध किया। उससे उसकी अपनी प्रतिभा भी व्यापक बनती चली। इस प्रतिभा के आधार से

गांधी ने क्रांति की समस्या का समाधान अपने प्रयोगों द्वारा खोजनेका ऐतिहासिक प्रयास किया।

मार्क्स के जमाने से यक्ष-प्रश्न एक ही है—इस दुनिया को बदलें कैसे? प्रश्न यह नहीं है कि इस दुनिया को समझें कैसे? वैज्ञानिक ने दुनिया का, संसार का, विश्व का आविष्कार किया। तत्त्वज्ञों ने-दार्शनिकों ने उसको समझाया। अब प्रश्न रहा उसको बदलें कैसे? साथ-साथ यह भी सवाल है कि उसे बदलें किस उद्देश्य से? अपनी कल्पना का संसार बनाने के लिए नहीं, उसको अपना रंग देने के लिए नहीं, लेकिन उसको मनुष्यों के रहने लायक बनाने के लिए। मतलब, मनुष्यों में निरुपाधिक सम्बन्ध की स्थापना के लिए। निरुपाधिक सम्बन्ध वह सम्बन्ध है जो अर्थप्रधान नहीं है, रक्तप्रधान नहीं है, जिसके लिए कोई उपाधि नहीं है—आर्थिक नहीं, जन्म की नहीं, रक्त की नहीं, वर्ग की नहीं। मनुष्यों का निरुपाधिक सम्बन्ध प्रत्यक्ष व्यवहार में प्रकट होना चाहिए। सम्बन्ध ही व्यवहार है। गांधी ने इसी उद्देश्य से जो प्रयोग किये, उन्हें 'सत्य के प्रयोग' कहा। मनुष्यों के नित्य व्यवहार में निरपेक्ष प्रेम की अभिव्यक्ति ही मानवीय सम्बन्धों का शुद्धीकरण है। यही जीवनका सत्य है। गांधी ने माना—जबतक आजका समाज है तब तक सम्बंधोंका शुद्धीकरण संपन्न हो नहीं सकता। अतः संदर्भ-परिवर्तन आवश्यक है। संदर्भ-परिवर्तन के बाद युद्ध, शस्त्र, गरीबी-अमीरी नहीं रहेगी। गांधी और मार्क्स दोनों का इस विषय में एकमत है।

मार्क्स का कहना है, शस्त्र-प्रयोग में जितनी अनिवार्य हिंसा आती है उतनी हिंसा के बिना सामाजिक क्रांति नहीं होगी। एक प्रमुख क्रांतिनेता का वाक्य प्रसिद्ध है: 'जिस पुराने समाज के गर्भ में नया समाज आता है उसकी धाय (धात्री, दाई) हिंसा है।' लेकिन प्रश्न यह है कि क्या क्रांतिकारी शस्त्र-प्रयोग को प्रशस्त मानता है या अनिवार्य? अनिवार्य का अर्थ हो है कि वह प्रशस्त—फर्स्ट बेस्ट नहीं है, गौण—सेकण्ड बेस्ट है। यही क्रांतिकारी की भूमिका है। उसे बल-प्रयोग और शस्त्र-प्रयोग के बिना समाज-परिवर्तन की युक्ति, प्रक्रिया, उपलब्ध हो जाय तो आनन्द होगा। शस्त्र के प्रयोग में आनन्द नहीं है, क्योंकि वह हत्यारा या खूनी नहीं है, क्रांतिकारी है। वह कहता है: अब मैं थक गया हूँ, विवश हूँ, मजबूर हो गया हूँ। जोर-जबरदस्ती के बिना अब कोई चारा नहीं दिखाई देता है। क्रांति के विज्ञान और कला में शस्त्र-प्रयोग प्रशस्त नहीं है। वह मुख्य साधन नहीं है।

लेकिन गांधी के पहले जितने निःशस्त्र प्रतिकारी हुए उन्होंने निःशस्त्र प्रतिकार को सेकण्ड बेस्ट के रूप में—गौण साधन के रूप में अपनाया। उनकी भूमिका यह रही कि शस्त्रप्रतिकार हमारी शक्ति से बाहर है, परन्तु उत्तम वही है। हमारे लिए वह अनुपलब्ध है, इसलिए निःशस्त्र प्रतिकार का आश्रय करना पड़ता है। अर्थात् उन्होंने निःशस्त्र प्रतिकार को गौण स्थान दिया। गांधी ने निःशस्त्र प्रतिकार को प्रथम स्थान दिया। क्रांति की प्रक्रिया में ही मूल्य-परिवर्तन किया।

इंग्लैंड में साम्प्रदायिक शिक्षण के विरोध में निःशस्त्र प्रतिकार हुआ। उसके बाद स्त्री-मताधिकार के लिए स्त्रियों का निःशस्त्र प्रतिकार हुआ। इन सबसे लेकर अरविन्द और लोकमान्य तिलक तक सबने निःशस्त्र प्रतिकार को 'सेकण्ड बेस्ट' माना। गांधीने कहा: 'मैं शांतिवादी नहीं हूँ। शस्त्र का विरोधी नहीं हूँ। कायर नहीं हूँ। सशस्त्र प्रतिकार से अधिक श्रेयस्कर प्रतिकार के लिए मैं शब्द की खोज में हूँ।' और उसे शब्द मिल गया 'सत्याग्रह'। गांधी की क्रांतिकारी प्रतिभा की यही विशिष्टता है। प्राप्त परिस्थिति में जो साधन उपलब्ध है, उस साधन का यदि प्रयोग कर लिया, तो मूल्यों में उससे क्रांति नहीं होगी। संदर्भ-परिवर्तन भी पूरा नहीं होगा। समग्र क्रांति के लिए नये साधन चाहिए, जो मूल्य-परिवर्तन करें। गांधी ने कहा, 'समाज-परिवर्तनको जितनी उत्कंठा, उत्कटता सशस्त्र क्रांतिकारी में हो सकती है, कम से कम, मेरी उत्कटता उतनी तो है ही।' जब गांधी से कहा गया कि 'तुम जो प्रयोग कर रहे हो, सत्याग्रह का, उस प्रयोग में से हिंसा फूट सकती है', तो उसने कहा: 'इसके लिए मैं सावधान हूँ।' सावधान है, कायर नहीं है। गांधी जागरूक होकर सावधानी से प्रयोग करता रहा। गांधी के सामने दो प्रकार की हिंसा थी। एक ब्रिटिश साम्राज्य की हिंसा और दूसरी समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में लगे क्रांतिकारियों की हिंसा। आज हमारे सामने भी ये दो हिंसाएँ हैं। एक हिंसा है समाजमान्य, परंपरागत, प्रतिष्ठित, संगठित पूंजीवाद की, जिसमें नब्बे प्रतिशत मनुष्यों को जीने का अवसर ही नहीं है। जीवन ही उनके लिए सुसह्य नहीं है। मानवीय सम्बन्ध तो आगे की बात हुई। धारणा यह है कि पूंजीवाद समाज-संमत, विधानमान्य, प्रतिष्ठित विहित हिंसा करता है।

गांधी और सॉक्रेटिस में भी बड़ा फर्क है। सॉक्रेटिस से जेल से भाग जाने के लिए कहा तो वह कहता है, 'मैं इस लोक के कानून नहीं मानूँगा,

तो स्वर्ग के कानून मुझसे कहेंगे, तू हमें भी तोड़ देगा। तूने भूलोक में कानून भंग किया है, तेरा क्या विश्वास?' लेकिन गांधी ने कहा: 'न विधान, न संविधान और न कोई शास्त्र मेरे मार्ग में बाधक हैं। मैं अपने मार्ग में किसी प्रकार की बाधा का स्वीकार नहीं करूँगा।' समाज में जो आज संगठित और समाज-रचना में निहित हिंसा है, क्या उसे क्रांतिकारी सहेगा? पूंजीवाद में निहित हिंसा है। नक्सलवादियों की हिंसा का विरोध क्या हम इसलिए करें कि यह समाज सुरक्षित रहे? वर्तमान समाज के संरक्षण के लिए मैं अपनी जान देने के लिए तैयार नहीं हूँ। गांधी ने नूतन मूल्यों की प्रस्थापना के लिए जान दी। नक्सलवादी हिंसा के प्रतिकार का परिणाम यह हो कि वर्तमान समाज सुरक्षित रहे, तो हमारी अहिंसा न तो 'प्रोफिलेक्टिक' होगी और न 'थेरोप्यूटिक' ही होगी। न तो प्रतिबन्धक और न निवारक होगी। यह क्रांतिकारी हिंसा नहीं है। १९२२ में अदालत में गांधी जब खड़ा हुआ, तो उसने कहा: 'मैं जानता था कि मैं आग के साथ खेल रहा हूँ। आप मुझे छोड़ देंगे तो मैं फिर से वही करूँगा। मैं हिंसा से डरता नहीं हूँ। फिर भी हिंसा क्यों नहीं करता? इसलिए कि उससे क्रांति नहीं होगी। मैंने हिंसा को निषिद्ध माना है। उससे डरा नहीं हूँ। डरा हुआ आदमी क्रांति नहीं कर सकता।' १९३० में लार्ड इर्विन को चिट्ठी में भी यही लिखा कि इस चिनगारी में से दावानल धधक सकता है। लेकिन मैं उसे रोक नहीं सकता। १९४२ में अंग्रेजों से देश छोड़ने को बात की। कह दिया कि, 'हमें ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ कर भी आप चले जाइये।' इसमें समाजपरिवर्तन की उत्कटता प्रदर्शित हुई। इसका संकेत गांधी के शब्दों में ही निहित है।

समाज का परिवर्तन आज की अनिवार्य आवश्यकता है। आज का समाज हिंसक है। इसमें तो मनुष्यों के सम्बन्ध का अधिष्ठान ही गलत है। समाज के तीन लक्षण हैं। एक आधुनिक अर्थशास्त्री महिला, जो मार्क्सवादी या समाजवादी नहीं है, जोन रॉबिन्सन कहती हैं कि, 'आज के युग के तीन प्रमुख लक्षण हैं। एक, राज्य की प्रतिष्ठा और उसका महत्त्व अतिरिक्त बढ़ गया हैं। दूसरा, उत्पादन में यंत्रशक्ति का व्यापक विनियोग और तीसरा, जीवन के सारे क्षेत्रों में पैसे का प्रवेश हो गया है।' तीसरा लक्षण हम छोड़ दें। पहले दो लक्षण पूंजीवादी और साम्यवादी दोनों व्यवस्थाओं में दिखाई देते हैं। आज जो साम्यवादियों के दो गुट—शैव और वैष्णव सम्प्रदायों की

तरह—बन गये हैं। इनके संक्षिप्त सांकेतिक नाम हैं—'रुक्को' और 'चिक्को'—रूसवादी और चीनवादी। मैं माओवादी नहीं कह रहा हूँ, उसके लिए तो माओ अध्यक्ष हैं और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी उसका आचार्यपीठ। रुक्को और चिक्को दोनों संप्रदायों की निष्ठा रहस्यवादी और छायावादी पंथवाद में परिणत हो गयी। नतीजा क्या हुआ? उनका जो कार्यक्रम था, उसको कार्यान्वित करने के लिए कठोर मध्यवर्ती नियंत्रण की आवश्यकता हुई। राज्य की व्याप्ति और राज्यसत्ता का विस्तार अतिरिक्त बढ़ गया। अब जो समाज-परिवर्तन याने अद्यतन क्रांति हम चाहते हैं, उसमें ये दो चीजें नहीं होनी चाहिए—राज्य की अतिरिक्त प्रतिष्ठा और उत्पादन में यंत्रशक्ति के विनियोग का दुष्परिणाम। यह आज के क्रांतिकारी की आकांक्षा है। इसमें यंत्रशक्ति का निषेध नहीं है, स्वीकार है, लेकिन उसका परिणाम केन्द्रित शक्ति द्वारा नियंत्रण में नहीं होना चाहिए, यह आज के क्रांतिकारियों की मांग है।

रिफ्लेक्शन ऑन द रेवोल्युशन-१९६८ में आंद्रे गोर्ज़ने लिखा है—'केन्द्रित नियंत्रण जिन संगठनों में है, वे सारे के सारे संगठन दकियानूस हैं। परंपरा का संरक्षण करनेवाले हैं, स्थितवादी हैं। वे लोगों का नेतृत्व नहीं कर सकते। नये संगठन की आवश्यकता है। लेकिन कैसा संगठन? जो लोगों पर सत्ता प्रस्थापित नहीं करेगा, मार्गदर्शन नहीं करेगा। एक ऐसा संगठन चाहिए, जो संगठन लोगों की सहायता करेगा, लोगों में स्वायत्त शासन की शक्ति, आत्मानुशासन की शक्ति पैदा करेगा और सत्ता नीचे से ऊपर की ओर जायेगी। और इस तरह केन्द्रित सत्ता शून्य बन जायगी। हमें भिन्न प्रकार का शासन नहीं चाहिए।' लगता है, जैसे गांधी ही बोल रहा हो। आज के तरुण क्रांतिकारी की यह आवाज है। दूसरा है कानबेण्डिट, जर्मन लड़का। उसने किताब लिखी है 'ओब्सालीट कॉम्युनिज्म, द लेफ्टविंग आल्टर्नेटिव्ह'। पुस्तक के अंत में उसने एक पुरानी रिपोर्ट से उद्धरण लेकर कहा है: 'इसमें मेरी ही बात आ जाती है।' उसमें चार बातें हैं—ऐसे समाज को हम स्थापना करना चाहते हैं जिसमें राज्य के लिए मान्यता नहीं होगी, धर्म के लिए मान्यता नहीं होगी, सैन्य के लिए मान्यता नहीं होगी। जिसमें संपत्ति कौटुम्बिक या वैयक्तिक—पर्सनल या प्राइवेट—नहीं होगी। जिसमें विवाह के आज के बन्धन नहीं होंगे। राष्ट्रों की सीमाएं नहीं होंगी। आंतरराष्ट्रीय एकता का साम्राज्य होगा। यह कैसे हो? तो कहता है, 'सभी आओ।

काम में लग जाओ—लोगों के लिए नहीं, लोगों के साथ। लोगों के लिए कानून नहीं बनेंगे, स्वयं लोग ही कानून बनावेंगे। यह आधुनिकतम क्रांति की आकांक्षा है।' इसके बाद 'रेवोल्युशन इन द रेवोल्युशन?' के लेखक रेगिस डिब्रे कहता है: 'फ्रांस में, अमेरिका में जो परिस्थिति थी वह लेटिन अमेरिका, आफ्रिका और एशिया में नहीं है। इसलिए लेटिन अमेरिका, आफ्रिका और एशिया में जो क्रांति की प्रक्रिया होगी, वह इससे अलग और विशिष्ट होगी।'

शेंगवारा, हो ची मिन्ह और कैस्ट्रो जैसे क्रांतिकारी जो आज प्रसिद्ध हैं, इनका अलग सम्प्रदाय चला। नये तरीकेका आविष्कार उन्होंने भी करना चाहा। मेरे कहने का आशय है कि अब क्रांतिकी नयी प्रक्रिया को शोध मनुष्य के लिए आवश्यक है। अब किसी क्रांति की कार्बन कापी से काम नहीं चल सकता। क्रांति को प्रक्रिया का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुसरण भी नहीं हो सकता। हर अवसर अपनी अपूर्वता और नवीनता लेकर आता है। हर परिस्थिति इतिहास में अपूर्व और अद्वितीय होती है। यह सब उस परिस्थिति में क्रांति का कौन-सा साधन, कौन-सी प्रक्रिया हो सकती है, यह खोज है। यह खोज कहां तक पहुंची? ये लोग इस परिणाम पर पहुंचे कि हिंसा अनिवार्य है। किसी न किसी रूप में हिंसा करनी ही पड़ेगी, लेकिन राज्य की संगठित हिंसा-शक्ति—जिसमें सब संगठन आ जाते हैं—हमारे सामने खड़ी है। अतः इन लोगों का नारा है, संगठनों के विरोध का।

जो क्रांतिकारी होता है वह संगठन की मर्यादा में बन्द नहीं रह सकता। और संगठन क्रांतिकारी के साथ कदम नहीं मिला सकता, यह समझ लेने की बात है। चीन में भी यही हो रहा है। पार्टी का अध्यक्ष अलग पड़ गया। माओ अपने रास्ते पर आगे बढ़ा। कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन से वह अलग पड़ गया। क्रांतिकारी राजनीति को पार कर जाता है। राजनीति तो Philosophy of the second best and art of the possible है। उसके दर्शन में उत्कृष्ट की अपेक्षा व्यवहार्य का महत्त्व अधिक है। वह व्यवहार्यता की कला है। क्रांतिकारी इससे परे जाता है। असंभव को संभव बनाता है।

एक क्रांतिकारी ने आत्मविश्वासपूर्वक लिखा है: 'जो असंभव है, हमारी पकड़ में नहीं है, वह करना ही क्रांति है। असंभव को कर दिखाना ही

हमारी प्रतिज्ञा है।' हर क्रांतिकारी अगला कदम इसलिए रख सका कि असंभव को अपनी पकड़ में लाना उसने अपना कर्तव्य माना। जो कहता है कि इतिहास में जो कभी हुआ नहीं वह कल भी नहीं होगा, वह क्रांति कर नहीं सकता। उसकी तबीयत में क्रांति नहीं है। उसके संकल्प में ही क्रांति नहीं है, क्योंकि वह पूछेगा, किसी दूसरे किसी देश में यह हुआ है? किसी क्रांतिकारी देश ने यह प्रश्न पूछा था? क्या चीन-रूस ने यह पूछा कि क्या दूसरे देश में समाजवाद कभी हुआ है? हम नकलची जो ठहरे। नकल उतारना ही जानते हैं। कैस्ट्रो, हो ची मिन्ह, शेगंवाराने नये तरीके की खोज की। राज्य की संगठित हिंसा-शक्ति का मुकाबला संगठित हिंसा से नहीं कर सकते। हमारे पास उतने शस्त्र और संगठन भी नहीं हैं। तो क्या करें? हिंसा भी हो और प्रभावशाली भी हो, कार्यक्षम भी हो। लेकिन संगठित हिंसा नहीं हो सकती। इसलिए छापेबाजी की लड़ाई करते हैं, जिस 'गोरिला' कहते हैं। यहां तक वे पहुंचे। उनका मंत्रद्रष्टा हर्बर्ट मार्क्यूज है। उसने कहा : 'यह छापेबाजी की लड़ाई तो अपने उद्देश्य को ही खो देती है, कलुषित करती है। आज की समाज-रचना में जो नैतिक चुनौती है, उसका स्वीकार करने की क्षमता उसमें नहीं है। क्यों नहीं? क्योंकि उसमें प्रतिज्ञा की विरोधी प्रक्रिया है। प्रतिज्ञा क्या है? प्रतिज्ञा है कि सब लोग, पूरी की पूरी जनता, जिसमें सक्रिय हिस्सा ले सके वही लोक-क्रांति है। क्रांति की प्रक्रिया में साधारण नागरिक भी सक्रिय हिस्सा ले सके। वह तो इसमें हो नहीं सकता। नक्सलवादियों के साथ भी ऐसा ही हुआ। अब वे कहते हैं कि जनता निर्णय थोड़े ही करती है। निर्णय तो मुट्ठीभर प्रभावी क्रांतिकारी ही कर सकते हैं।

भारत के कम्युनिस्ट नेताओं से माओ ने कहा था : 'पिछड़े हुए देशों में क्रांति तो किसान के ही पुरुषार्थ से होगी। जाओ, अपने देश के किसानों को संघर्ष के लिए संगठित करो। सत्ता हस्तगत करने का यह पहला चरण है। किसान के पुरुषार्थ को उपेक्षा करना क्रांति से ही इनकार करना है।'

स्टालिन ने सलाह दी थी : 'संघर्ष का क्षेत्र ऐसा चुनो, जो किसी साम्यवादी राज्य की सीमा का समीपवर्ती हो।'

माओ की सलाह के मुताबिक नक्सलवादियों ने किसानों को संगठित करने के बदले जमीन पर कब्जा करने का उपक्रम किया। लेकिन माओ के

परामर्श में एक बात यह भी थी कि संसदीय संस्थाओं को अक्षम और बेकार बना दो।

लेकिन अतिवादी मार्क्सिस्टों में से कुछ चुनाव में खड़े हुए। तेलंगाना में भी वही हुआ। इसलिए नक्सलवादियों का अलग गुट बन गया, लोकक्रांति को चरितार्थ करने के लिए। लेकिन अब वे कहते हैं: हम लोगों को राह नहीं देख सकते। उनकी 'अनशन-दर्शन' पुस्तिका में यह स्पष्ट लिखा है। माओ को भी उन्होंने छोड़ दिया। शैगंवाराकी नीति को अपनाया। ये सबके सब क्रांतिकारी छापामारी पर पहुंचे। लेकिन छापामारी लड़ाई की दो मर्यादाएं हैं। साधारण नागरिक उसमें प्रत्यक्ष भाग नहीं ले सकता और स्त्री के लिए भी सक्रिय भाग लेने की गुंजाइश नहीं है। जैसा कि रोटरी क्लब में और कुछ मंदिर-मस्जिदों में है। रांची के एक कारखाने में एक बार मुझे जाना था, मेरी बेटी को प्रवेश नहीं दिया था। आज भी वही मर्यादा रही है। छापामारी के तरीके में भी स्त्री सक्रिय हिस्सा नहीं ले सकती—चाहे इन्दिरा गांधी ही क्यों न हो? इसलिए क्रांति के एक ऐसे तरीके की, ऐसी प्रक्रिया की खोज है, जिसमें साधारण नागरिक भी प्रत्यक्ष हिस्सा ले सके, क्योंकि यह क्रांति का संकल्प है। आधुनिक क्रांतिकारी की यह प्रतिज्ञा है। अब जो क्रांति होगी, वह लोगों के लिए नहीं, लोगों द्वारा होगी। जिसमें लोगों का सक्रिय हिस्सा, लोगों का प्रत्यक्ष पुरुषार्थ होगा। क्या प्रतिज्ञा के अनुरूप क्रांति की इस प्रक्रिया का आविष्कार कोई क्रांतिकारी अपने प्रयोगों से कर सकता है? मैंने साधन-शुद्धि और हिंसा या अहिंसा की बात छोड़ दी है।

क्रांति के उद्देश्य की पूर्ति के लिए जिस प्रक्रिया की आवश्यकता है वह प्रक्रिया किस प्रकार की होगी? आज सबको माओ का आकर्षण क्यों है? पुरानी साम्यवादी क्रांति में—मार्क्सवादी प्रक्रिया में—किसान का स्थान नहीं था। दुनिया के इतिहास में माओ ने प्रथम त्रुटि की पूर्ति की। वह किसानों की रोमांचक क्रांति थी। उसका इतिहास अवश्य पढ़ें। माओ जब विजयी होकर पेकिंग आये, तो उनके किसान सिपाही बिजली के बल्ब को देखकर बीड़ी सुलगाने के लिए दौड़े थे। ऐसे किसानों के भरोसे माओ ने क्रांति की। तरुणों को माओ का आकर्षण इसीलिए है। माओ की क्रांति ग्रन्थनिष्ठ मार्क्सवादियों की क्रान्ति से भिन्न है। जो पहले कभी हो नहीं सका था, वह उसने करके दिखाया। माओ ने साबित किया कि किसान को

क्रांति हो सकती है। उसने क्रांति को यहां तक पहुंचाया। अब इसके बाद एक अगला कदम रखना है। किसान की क्रांति किन साधनों से होगी? किसान की क्रांति के लिए तीन बातों का ध्यान रखना होगा। एक तो यह कि किसान अपना काम करता है, दूसरे का नहीं। मजदूर भी आवश्यकता के अनुसार अपना काम करता है, लेकिन मुख्य रूप से वह दूसरोंका ही काम करता है। दूसरी बात यह कि किसानों में मालिक ज़्यादा हैं, मजदूर कम हैं। तीसरी परिस्थिति यह है कि किसान अलग-अलग काम करते हैं, मजदूरों की तरह एक जगह काम नहीं करते। इसलिए मजदूर और किसान की क्रांति की प्रक्रिया भी अलग हो गयी। स्वामित्वनिराकरण के तीन ऐतिहासिक तरीकों में से एक भी किसान के लिए लागू नहीं है। प्रतिहरण छोटे मालिकों का असंभव है। नक्सलवादियों से हो पूछें कि बड़े मालिकों की संपत्ति तो छीनेंगे, उन्हें मार भी डालेंगे; लेकिन छोटे मालिकों का क्या करेंगे? वे कहेंगे 'उन्हें समझायेंगे।' छोटे मालिक कितने हैं? अस्सी प्रतिशत छोटे मालिक हैं। उनको समझायेंगे तो बीस फी सदी बड़े मालिकों को समझाना भी नहीं पड़ेगा। वे बिना समझाये ही मान जायँगे। हिंसा की प्रक्रिया की यह खूबी है कि अधिक लोग हिंसा के लिए उद्यत हो जायँ तो हिंसा करनी ही नहीं पड़ती। हिंसा तब तक करनी पड़ती है, जब तक उसकी लवुमती होती है। जब अस्सी प्रतिशत समझ जायँगे, तो बीस प्रतिशत को समझाना नहीं पड़ेगा। पहला तरीका है 'एक्स्प्रोप्रिएशन' या प्रतिहरणका। छोटे मालिकों का प्रतिहरण असंभव है। दूसरा तरीका है 'कान्फिस्केशन' याने कानून से जब्त करने का। लेकिन कानून छोटे मालिकों के खिलाफ बनाने की हिम्मत सोवियट सरकार में भी नहीं है। तीसरा तरीका है 'टेक्सेशन' का। छोटे मालिकों पर कर मत लगाओ, ऐसा तो सभी कहते हैं। तब एक ही तरीका रह जाता है कि वे अपनी मिलकियत और मेहनत को मिला लें। राष्ट्रीयकरण नहीं, बल्कि श्रम और सम्पत्ति का, मालकियत का ग्रामीकरण। 'पीपल्स ओनरशिप' के सिवा और कोई तरीका नहीं है।

तब प्रश्न यही पूछा जायगा कि क्या इतिहास में ऐसा कभी हुआ है? दूसरे किसी देश में हुआ है? तो इसका उत्तर एक ही है कि जब तक दूसरे लोग कर न लें, तब तक राह देखो। दूसरा कर ले तब उसकी नकल कीजिए। फर्स्ट हैण्ड, ओरिजिनल क्रांति की बात मत करो। सेकण्ड हैण्ड, जूठी क्रांति करो।

इस मौलिक और अभिक्रमयुक्त क्रांति के लिए किस प्रकार के लोगों को आवश्यकता है? केमिस्ट्री के एक प्राध्यापक को एक बहुत कठिन परीक्षण करना था। परीक्षण करता है तो जान जाने का खतरा है, अगर नहीं करता है तो विज्ञान की प्रगति ठिठक जाती है। वह असमंजस में पड़ गया। इसलिए अपने से अधिक अनुभवी और चतुर श्रेष्ठ प्राध्यापक से सलाह लेने गया। सीनियर प्रोफेसर ने कहा: 'If you want a difficult job done, get the dammed fool do it who does not know that it cannot be done." (कोई मुश्किल काम कराना हो तो ऐसे बेवकूफ को पकड़ो जिसे यह पता ही न हो कि यह काम मुश्किल है।) लैटिन अमेरिका के उद्धारकर्ता सिमान बोलीवर ने कहा था कि इतिहास में ऐसे तीन 'डेम्ड फूल' (महामूर्ख) हुए—जीसस क्राइस्ट, डान क्विक्जोट एण्ड मायसेल्फ (बोलीवर)। भगवान् की कृपा से हमारे देश में इन मूर्खों का मुकुटमणि पैदा हुआ, जिसका नाम था मोहनदास करमचन्द गांधी।

Digitized for Preservation
By

Gandhi Research Foundation
Gandhi Teerth, Jain Hills, Jalgaon. 425 001

ગુજરાત યુનિવર્સિટીનાં વ્યાખ્યાનો

૧. **આયુર્વેદના મૂળ સિદ્ધાંતો** ...
[વ્યાખ્યાતા : ડૉ. પ્રાણજીવનદાસ મહેતા]

૨. **ભારતમાં પછાત જાતિઓ અને તેમનો ઉત્કર્ષ** ...
[વ્યાખ્યાતા : શ્રી. લક્ષ્મીદાસ શ્રીકાન્ત]

૩. **ભારતીય સંસ્કૃતિનો ઉદ્‌ગાતા અને બીજાં વ્યાખ્યાનો** ...
[ટાગોર જન્મશતાબ્દી પ્રસંગે અપાયેલાં વ્યાખ્યાનોનો સંગ્રહ]

૪. **Homage to Tagore** ...
[Tagore Birth Centenary Lectures]

૫. **ઇતિહાસ : સ્વરૂપ અને પદ્ધતિ** ... ૫-૦૦
[વ્યાખ્યાતા : રસિકલાલ છોટાલાલ પરીખ]

૬. **યુવાનોનું આરોગ્ય અને પોષક આહાર** ... ૦-૫૦
[વ્યાખ્યાતા : શ્રી. ચંદુલાલ કાશીરામ દવે]

૭. **બ્રેચ્ટ** ... ૧-૫૦
[વ્યાખ્યાતા : શ્રી. ચંદ્રવદન સી. મહેતા]